स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक। सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर।
भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १९ } गौराब्द ४८७, मास—केशव ६, वार—गर्भोदशायी, शुक्रवार, ३० कार्तिक, सम्वत् २०३०, १६ नवम्बर, १९७३ { संख्या ६

नवम्बर १९७३

श्रीब्रह्माकृतं श्रीश्रीभगवन्महिमा-स्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत २।७।३९-४२, ९।२४-२९)

श्रीब्रह्मोवाच—

सर्गे तपोऽहमृषयो नव ये प्रजेशाः स्थाने च धर्ममखमन्वमरावनीशाः ।
अन्ते त्वधर्महरमन्युवशासुराद्या मायाविभूतय इमाः पुरुशक्तिभाजः ॥१॥

ब्रह्माजीने कहा—हे नारद ! जगत् सृष्टिके समयमें तपस्या, मैं (ब्रह्मा) और नौ प्रजापति (मरीचि आदि) के रूपमें, जगत्की स्थितिके समयमें धर्म, यज्ञ (विष्णु), मनुगण, देवतागण एवं राजाओंके रूपमें तथा जगत्के संहारके समय रुद्र, क्रोध-परवश नामके सर्प एवं दैत्यों आदिके रूपमें अनन्त शक्तिधारी भगवान्की मायाविभूतियाँ ही प्रकट होती हैं ॥१॥

विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि ।
चस्कम्भ यः स्वरंहसास्खलता त्रिपृष्ठं यस्मात् त्रिसाम्यसदनादुरु कम्पयानम् ॥२॥

जो विष्णु भगवान्‌ने त्रिविक्रमावतारमें प्रतिघातशून्य अपने पादवेगसे प्रकृतिरूप अन्तिम आवरणसे लेकर सातों लोकों तक सारे ब्रह्माण्डको कम्पित किया था एवं पश्चात् स्वयं अपनी शक्तिसे उसका धारण किया था, ऐसे भगवान्‌के वीर्योंकी गणना करने में कौनसा व्यक्ति समर्थ हो सकता है ? जो व्यक्ति पृथिवीके परमाणुके परिमाण तक एक एक कर सभी वस्तुओंका गणना कर सकते हैं, ऐसे व्यक्ति भी भगवान् विष्णुके असीम वीर्यकी गणना नहीं कर सकते ॥३॥

नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये ।
गायन् गुणान् दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम् ॥३॥

हे नारद ! मैं स्वयं ब्रह्मा एवं तुम्हारे बड़े भाई मुनि आदि भी उन परमपुरुष भगवान् की मायाशक्तिका अन्त नहीं जान पाये (चिच्छक्तिका अन्त पाना तो दूरकी बात है) । इसलिए दूसरे-दूसरे जीवगण किस प्रकार उसका अन्त जान पायेंगे ? आदिदेव अनन्तजी असंख्य मुखों द्वारा उन परमपुरुष भगवान्‌की प्राकृत एवं अप्राकृत गुणावलीका गान कर भी अभी तक उसकी सीमा नहीं जान पाये ॥२॥

येषां स एष भगवान् दययेदनन्तः सर्वात्मनाश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम् ।
ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां नैषां ममाहमिति धीः श्वभृगालभक्ष्ये ॥४॥

वे अनन्त शक्तिमान् भगवान् ही (उनको छोड़कर दूसरे देवता नहीं) जिनके प्रति कृपा करते हैं, वे लोग यदि काय, मन एवं वचनसे निष्कपट (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष कामना रहित) होकर भगवान्‌के चरणकमलोंमें आश्रय ग्रहण करें, तो इस दुस्तरा (कठिनतासे पार की जानेवाली) दैवी मायाको पार कर सकते हैं। इन सभी शरणागत भक्तोंकी अपने कुत्ते सियार द्वारा खाये जानेवाले शरीरके प्रति 'मैं एवं मेरी' बुद्धि नहीं होती ॥४॥

भगवन् सर्वभूतानामध्यक्षोऽवस्थितो गुहाम् ।
वेद ह्यप्रतिरुद्धेन प्रज्ञानेन चिकीर्षितम् ॥५॥

ब्रह्माजीने भगवान्‌से कहा—हे भगवान् ! आप सभी प्राणियोंके अध्यक्ष हैं। अतएव आप अपनी अप्रतिहत प्रज्ञाके प्रभावसे सभी व्यक्तियोंकी इच्छाओंको जान सकते हैं ॥५॥

तथापि नाथमानस्य नाथ नाथय नाथितम् ।
परावरे यथा रूपे जानीयां ते स्वरूपिणः ॥६॥

हे नाथ ! तथापि मैं आपके निकट जो प्रार्थना कर रहा हूँ, मेरी उस प्रार्थनाका आप कृपा कर परिपूरण करें । मेरी यही प्रार्थना है कि मैं प्राकृतरूपरहित आपके पर (अप्राकृत)

एवं अवर (प्राकृत)—इन दोनों रूपोंको ही जान सकूँ ॥६॥

यथात्ममायायोगेन नानाशक्त्युपबृंहितम् ।
विलुम्पन् विसृजन् गृह्णन् बिभ्रदात्मानमात्मना ॥७॥
क्रीडस्यमोघसंकल्प ऊर्णनाभिर्यथोर्णुते ।
तथा तद्विषयां धेहि मनीषां मयि माधव ॥८॥

हे माधव ! हे अमोघसङ्कल्प ! मकड़ी जिस प्रकार अपने हृदयसे सूत्र विस्तार कर उसमें स्वयं विहार करती है, किन्तु स्वयं उसमें नहीं फँसती, उसी प्रकार आप अपनी आत्ममायाके प्रभावसे ब्रह्मादिके रूप प्रकट करते हुए नानाशक्ति समन्वित इस विश्वसंसार की जिस प्रकार सृष्टि, पालन एवं संहारकर क्रीड़ा करते हैं, मुझे उस विषयमें जाननेकी बुद्धि प्रदान करें ॥७-८॥

भगवच्छिक्षितमहं करवाणि ह्यतंद्रितः ।
नेहमानः प्रजासर्गं बध्येयं यदनुग्रहात् ॥९॥

हे भगवन् ! मैं आलस्यका परित्याग कर आपके द्वारा उपदेश किये गये वचनोंका अवश्य ही पालन करूँगा। आपके तत्त्वज्ञानोपदेशरूप अनुग्रह प्राप्त करनेपर मैं प्रजाओंकी सृष्टि कर भी अहंकारादिद्वारा आबद्ध नहीं होऊँगा ॥९॥

यावत् सखा सख्युरिवेश ते कृतः प्रजाविसर्गे विभजामि भो जनम् ।
अविक्लवस्ते परिकर्मणि स्थितो मा मे समुन्नद्ध-मदोऽजमानिनः ॥१०॥

हे ईश ! सखा जिस प्रकार सखाके साथ व्यवहार करता है, आपने भी (करस्पर्शन आदिद्वारा) मेरे साथ वैसा ही व्यवहार किया। जब मैं स्थिरचित्तसे उत्तम-मध्यमादि भेदसे लोकसृष्टिके पहले प्रजा-सृष्टि कार्यरूप आपकी सेवा नियुक्त रहूँगा, तब 'मैं भी अज (जन्मरहित) हूँ' (अर्थात् आपकी तरह स्वतन्त्र भगवान्, स्वराट् एवं समकक्ष हूँ)— ऐसे अभिमानका उदय मुझमें न हो ॥१०॥

भक्त की लालसा

स्याम-बलराम कौ, सदा गाऊँ ।
स्याम बलराम बिनु दूसरे देव कौं, स्वप्न हू माहिं नहिं हृदय ल्याऊँ ॥
यहै जप, यहै तप, यहै मम नेम-व्रत, यहै मम प्रेम, फल यहै ध्याऊँ ।
यहै मम ध्यान, यहै ज्ञान, सुमिरन यहै, सूर-प्रभु ! देहु हौ यहै पाऊँ ॥

—

मठवासियोंके कुछ कर्त्तव्य

[परमाराध्यतम ॐ विष्णुपाद १०८ जगद्गुरु श्रीश्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामी ठाकुरका एक अप्रकाशित पत्र]

स्नेहविग्रहेषु,

हम श्रीचैतन्य मठमें जो व्यक्ति आये हुए हैं, सभी ही श्रीचैतन्यदेवके आश्रित हैं। अतएव हमारे लिए हरिभजनको छोड़कर दूसरा उद्देश्य नहीं है। हमारा हरिभजन यदि कम हो जाए, तो विषयीका विचार आकर हमें ग्रास कर बैठेगा। मठकी रक्षा करनेके लिए कुछ नियमोंका पालन करना आवश्यक है—

(१) मठवासी संन्यासियोंका कर्त्तव्य है कि वे सर्वदा पादुका विहीन होकर पदचारण करते हुए आया जाया करेंगे। कदापि पादुका या वाहन ग्रहण नहीं करेंगे।

(२) किसी व्यक्तिकी सेवा नहीं ग्रहण करेंगे। तैल-मर्दन, पादसेवन आदि कार्य दूसरे व्यक्तिके द्वारा किसी प्रकारसे नहीं करायेंगे।

(३) उत्तम भोजन, स्वतन्त्र भोजन, परिपूर्णरूपसे परित्याग करने योग्य हैं।

(४) चिकित्सकके निकट कभी भी नहीं जायेंगे, औषधादि कदापि अपनी इच्छानुसार नहीं ग्रहण करेंगे। जब किसी संन्यासीके लिए कोई चीजकी आवश्यकता हो, तो मठवासियों का कर्त्तव्य है कि वे उनकी सुचिकित्सा करें। संन्यासियोंका भी कर्त्तव्य है कि जो लोग संन्यासी नहीं हैं, उनकी सेवा करना।

(५) परचर्चा, परनिन्दा, परदोष-अनुसंधान करनेपर जीवोंका अमङ्गल होगा। इसलिए अपने मङ्गलकी सर्वदा आकांक्षा करनी चाहिए एवं मन-विग्रह तथा वासनाका ध्वंस नाम-भजनके द्वारा होगा।

(६) प्रत्येक जीवके आत्मामें भगवानका निवास है। अतएव 'मैं पूज्य हूँ, सेव्य हूँ', ऐसी बुद्धि नहीं करनी चाहिए। मठवासी संन्यासी अभिमानका परित्याग कर मठमें वास करने पर उनकी सेवा करना उचित है, नहीं तो उनका घर लौट जाना अच्छा है।

(७) अत्यन्त बाबूगिरि (आडम्बर), दूध पान, अच्छे-अच्छे खाद्य ग्रहण आदि कार्य सर्वदा परित्याग करने योग्य हैं। हमारे मठमें कसरत करनेवालोंकी आवश्यकता नहीं है। हरिभक्त लोग ही मठमें वास करेंगे।

(८) अतिरिक्त औषधादि सेवनकर इन्द्रियोंको प्रबल बनाकर परस्त्री-गमन आदि चेष्टाके लिए अत्यन्त तीव्र चेष्टा करना पूर्णतया परित्याग करने योग्य है।

(९) सभीके एकमात्र प्रभु एवं एकमात्र भोक्ता कृष्ण हैं एवं मैं सभीका दास एवं सेवक हूँ, यह बात सर्वदा स्मरण रखने योग्य है।

जिनकी जैसी भक्ति है, उनकी उसके अनुसार सेवा करना कर्त्तव्य है। भक्त मेरी सेवा करें, ऐसी दुर्बुद्धिके हाथसे परित्राण न पाने पर हमारा मङ्गल न होगा। अपनी शारीरिक सुविधाके लिए जो तीव्र कामनाका उदय हो, उसे त्याग करना चाहिए। किन्तु इसलिए भद्र (सभ्य)समाजमें मिलने-जुलनेके लिए असभ्य भाषा एवं वस्त्रादि ग्रहण नहीं करना होगा।

ब्रह्मचारी लोग अपने भोगोंको प्रबल करनेके लिए संन्यासी बननेकी आकांक्षा नहीं करेंगे। प्रभुत्वकी कामना हरिभजन कदापि नहीं है।

विलासीको संन्यासी समझना, उसी आदर्शसे अपनेको विलासी सजानेकी चेष्टा-इच्छा आदिका पूर्णरूपसे परित्याग करना होगा। आत्मेन्द्रिय-तर्पणपर कार्य या कपटता का उदय होनेपर भगवान या भक्तके प्रति सेवा-प्रवृत्ति नहीं रहती।

जिससे श्रीचैतन्य मठमें किसी प्रकार का आडम्बर प्रवेश कर संन्यासी-ब्रह्मचारी आदिका सर्वनाश न करे,उसके प्रति दृष्टि रखना आवश्यक है।

जिस प्रकारका नमूना आजकल प्रस्तुत हो रहा है, उसका आदर किया नहीं जा सकता। गृहस्थ व्यक्ति भी संन्यासीकी तरह काम-क्रोधादिके वशीभूत नहीं होंगे। प्रत्येक व्यक्ति ही अपनेको सबसे तुच्छ एवं हीन जानकर मठवासी एवं वैष्णवोंकी सेवा करेंगे।

जो व्यक्ति मठवासी नहीं है या किसी कार्य साधनके लिए मठमें रहकर कार्य कर रहे हैं या मठसे किसी प्रकारका उपकार चाहते हैं, उनको सर्वदा इस विषय पर दृष्टि रखना होगा कि वे मठवासी वैष्णवोंकी सेवा करनेके लिए सर्वदा प्रस्तुत रहें। मठवासी व्यक्ति इन आगन्तुक सज्जनोंके साथ किसी प्रकारका असद् व्यवहार नहीं करेंगे। मठवासी व्यक्ति यदि मठको अपनी सम्पत्ति समझें एवं आगन्तुक मठवासियोंको अनुग्रहका पात्र समझें, तो ऐसा समझना अनुचित है। आगन्तुक व्यक्तियोंको सब प्रकारसे सम्मान देना होगा। जगतके सभी व्यक्तियोंको सम्मान देना होगा। भोक्ता समाज में जो दुर्गति हुई है, उसमें हम पड़ न जाय, उसके प्रति दृष्टि रखनी होगी। मठवासियोंका कर्त्तव्य है कि इन सब बातोंको अच्छी तरह स्मरण रखें। कृष्ण-सेवा सब समय करना कर्त्तव्य है, इसमें भूल न कर बैठें। वैष्णव-सेवा इसकी अपेक्षा और भी अधिक ध्यान देने योग्य है। मठके कार्यको छोड़कर अपने कार्य से दूकान या चिकित्सालयमें जाना हो, तो संन्यासी पैदल जायेंगे। वाहनके रहनेपर भी वे उसके अधिकारी न होंगे, किसी भी यान-वाहन अपने लिए नहीं पायेंगे। मठकार्यको छोड़कर दूसरे कार्यके लिए सब सुविधाएँ नहीं मिलेंगी।

कोई यान वाहन व्यवहार किया नहीं, किन्तु चिकित्सालय जानेकी छलनासे मोटरमें जाय, दवाई खरीदें, Luxury या Luxurious food (ऐश-आराम या ऐश-आराम युक्त खाद्य) व्यवहार करें, तो एक वर्ष तक उनका व्यवहार ठीक हुआ या नहीं, यह विवेचना की जायगी। मठ शौक-आडम्बरका स्थान नहीं है या

अस्पतालमें रहकर आडम्बर करनेका स्थान नहीं है। ये सभी व्यवहार अपने अपने घरमें रहकर करनेपर उत्तम होगा। रक्त वस्त्रके बदले में सीधे रूपसे सफेद कपड़े पहनाकर ऐसे व्यक्तियों को घर भेज देना होगा। जो व्यक्ति आडम्बर एवं अच्छे-अच्छे खाद्य-पथ्यादि चाहें, वे अपने अपने घर लौटने पर मठका परिचय न देना होगा। अपने-अपने संसारका पालन करें।

गाड़ी, घोड़ा, यान, यन्त्र एवं लोकविशेष आदि सभी कुछ मठके व्यवहारके लिए हैं, व्यक्तिगत बहादुरी या आडम्बरके लिए नहीं हैं, यह बात अच्छी तरहसे जानने योग्य हैं। भोजन-परिपाटी या चातुरी पूर्णरूपसे बन्द कर देनी होगी। जो सभी संन्यासी आडम्बर न करें, उन्हें गौड़ीय मठके संन्यासी जानकर आदर यत्न करना चाहिए। इसको छोड़कर और सभीको घरमें छोड़ देना होगा। उससे यदि हमारे मठवासी व्यक्तियोंकी संख्या कम हो जाय, तो कोई हानि नहीं। जो सभी भोगी व्यक्ति मठमें आश्रय लिये हुए हैं, उनको पूर्णतया विदा देनेसे मठका खर्च कम हो जायगा। सभी कार्योंको हरिनामके साथ करने पर सुविधा होगी। आडम्बरपरायण व्यक्तियों को अर्थ नष्ट करने नहीं दिया जाएगा। मठके प्रत्येक व्यक्तिको मठके लिए अर्थ अर्जन करना होगा। कौन कितना अर्जन करता है, इसकी एक सूची तैयार करना आवश्यक है। उसकी अपेक्षा अधिक भोजन, औषध या आडम्बर इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

हरिभजनके लिए लोग आए हुए थे, वे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ एवं भिक्षु हैं। जो हरिभजन न करें, उनकी मठ रक्षा नहीं करेगा। क्योंकि वे मठके अधीन नहीं हैं। मैंने मठकी प्रचुर सेवा की है, इसलिए मोटरमें चढ़ूँगा या भोग विलास करूँगा— इस विचार को कदापि प्रश्रय नहीं देना होगा। वह बात गृहासक्त व्यक्तियोंकी बात है। जो व्यक्ति मठ की सेवा करेंगे, वे मठके किसी द्रव्यके बदले में कोई द्रव्य नहीं लेंगे। क्योंकि सभी व्यक्ति ही मठकी सेवाके लिए आये हुए हैं। गृहासक्त व्यक्तिकी तरह बदलेमें कोई द्रव्य लेनेपर, अपनी सेवा स्वयं करनेपर विलासी हो जाना पड़ेगा। निमन्त्रण कर भोजन करानेपर भोक्ता की अपनी कोई बात सुननी न होगी। निमन्त्रण-कारी व्यक्तिके अनुसार भोजन करना होगा। जो व्यक्ति अपने भोग विलासके लिए व्यस्त हों, उन्हें विदा देना कर्त्तव्य है।

—नित्याशीर्वादक श्रीसिद्धान्त सरस्वती

अनमोल वचन

"पशु, पक्षी, कीट-पतङ्ग आदि लाख लाख योनियोंमें जन्म ग्रहण करना बल्कि अच्छा है, किन्तु तथापि कपटताका आश्रय लेना अच्छा नहीं है।"

—जगद्गुरु १०८ श्रीश्रील प्रभुपाद

प्रश्नोत्तर

(युक्तवैराग्य एवं दैन्य)

१-युक्त वैराग्यका आचरण किस प्रकार से होता है ?

"घोड़ेको वशीभूत करनेकी तरह मनको कुछ कुछ उसके द्वारा देखे जानेवाले विषयोंमें भुलाकर आत्माके वशमें करना कर्त्तव्य है—यही युक्त वैराग्य है। इसीके द्वारा ही भजनमें उपकार होता है।"

—चै० शि० ६।५

२-यथार्थ वैराग्य किसे कहते हैं ?

"यथार्थ वैराग्यके उदय होनेपर संन्यासाश्रमके उचित वैराग्यका आचरण करना चाहिए। अथवा भगवत्सेवापर होकर गृहस्थ-जीवनगत चेष्टाओंको संकुचित करें—इसीका नाम यथार्थ वैराग्य है।"

चै० शि० २।५

३-किसके परिमाणके अनुसार शुद्ध ज्ञान-वैराग्यकी वृद्धि होती है ?

"भक्ति जिस परिमाणमें शुद्धोदय प्राप्त (शुद्ध रूपसे उदित) होती है, उसीके परिमाण में शुद्धज्ञान एवं शुद्धवैराग्य अवश्य बढ़ेंगे।"

चै० शि० १।७

४-यथायोग्य विषय स्वीकारका तात्पर्य क्या है ?

"यथायोग्य विषय स्वीकार करो"—इस आज्ञाका तात्पर्य यही है कि इन्द्रिय-प्रीति के लिए विषय ग्रहण करना उचित नहीं है, केवल आत्माके साथ कृष्ण सम्बंध स्थापन करनेके लिए जितना विषय स्वीकार करना आवश्यक है, वही करना चाहिए।"

चै० शि० १।७

५-ज्ञान-वैराग्य-भक्ति आदि आत्माके कौन-कौनसे कार्य करती हैं ?

"भक्तिजनित सम्बन्ध ज्ञान और दूसरे विषयोंमें वैराग्य अपने आप ही उत्पन्न होते हैं। जहाँ वे उत्पन्न नहीं हो, वहाँ भक्तिका अभाव जानना होगा। इसलिए उसे 'कपट भक्ति' जानना होगा। वैराग्यसे आत्माकी तुष्टि, सम्बन्ध ज्ञानसे आत्माकी पुष्टि एवं भक्तिक्रियाके द्वारा आत्माकी क्षुधा निवृत्ति होती है।".

—'भक्त्यानुकूल्यविचारः'

श्री भा० म० मा० १५।११७

६-कौनसी भावना युक्त-वैराग्यकी पराकाष्ठास्वरूप है ?

"कृष्णसेवा सम्बन्धमें देहको सिद्धिके अनुकूल जानकर उसे आदर प्रदान करते हैं। देह के बिना कृष्णभजन नहीं होता। अतएव कृष्ण भजनानुकूल देहके संरक्षणमें विशेष आदर प्रकाश कर भी भजनप्रतिकूल समस्त देह-गृहादिके प्रति तुच्छ बुद्धि रखते हैं। इसी

प्रकारकी भावना ही युक्त-वैराग्यकी पराकाष्ठा है।"

—'प्रयोजनविचारः',

श्री भा० म० मा० १७।२१

७–भजन करनेवाले व्यक्तियोंके लिए किस भावकी आवश्यकता है ?

"सर्वदा हृदयमें दीनता रहनी चाहिए।"

—भक्त्यानुकूल्यविचारः',

८–किस प्रकारके भक्ति-कार्यको दीनता कहते हैं ?

"मैं कृष्णदास हूँ, अकिंचन हूँ, मेरा कुछ भी नहीं है, कृष्ण ही मेरे सर्वस्व हैं—ऐसी भक्तिकी भावना ही दीनता है।"

—जै० ध० ८वाँ अ०

९–किस प्रकार भक्तिके प्रबल होनेपर अन्वय (अनुकूल) अनुशीलनमें उन्नति होती है ? "दीनताके सबल होनेपर अवश्य कृष्ण कृपा प्राप्त होती है। ऐसा होनेपर बलदेव भावके आविर्भावसे वे (भारवाहित्व रूप 'धेनुकासुर', एवं स्त्री-लाम्पट्य, लाभ-पूजा, प्रतिष्ठाशारूप 'प्रलम्बासुर') क्षणमात्रमें ही विनष्ट हो जाते हैं। यह प्रक्रिया स्वभावतः गुप्त रूपसे होती है एवं सद्गुरुके निकट इसकी शिक्षा करनेकी आवश्यकता है।" चै० शि०

१०–किस प्रकारके विचारसे यथार्थ दीनता प्रकाश पाती है ?

"मैं चिन्मय जीव हूँ, अपने कर्मदोषसे संसारमें नाना प्रकारके क्लेश आदि भोग कर रहा हूँ, मैं दण्डका (दण्ड प्राप्तिका) उपयुक्तपात्र हूँ। कृपामय कृष्णका नित्यदास होकर उनके चरणकमलोंके आश्रयको भूल जानेके कारण ही मैं कर्मचक्रमें प्रवेश कर इतना क्लेश पा रहा हूँ। मेरे जैसे दुर्भागा और कौन है ? मैं सबकी अपेक्षा हीन, दीन एवं अकिञ्चन हूँ।"

—'श्रद्धा और शरणागति', स० तो० ४।९

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद
श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीभगवान्‌की लीला

लीला एवं कर्ममें आकाश-पातालकी तरह बहुत भेद है। बद्धजीव जो कार्य करते हैं, वही कर्म है। ऐसे कर्ममें कर्म-फल बाध्यता है अर्थात् वे जो कर्म करते हैं, उसका कुछ फल भविष्यमें भोग करना पड़ता है। इसलिए पाप एवं पुण्य विचारसे कर्म करनेके लिए वेदों में जीवोंके लिए जो उपदेश दिया है, उसमें श्रीभगवान्‌के लिए किसी प्रकारकी विधि-

बाध्यता नहीं है अथवा वे जो कुछ करते हैं, उसका फल-भोग भी जीवोंकी तरह श्रीभगवान्‌को करना नहीं पड़ता। क्योंकि वे जो कुछ करते हैं, उसमें उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है। भगवान् स्वेच्छासे जो कार्य करते हैं, वह जीवोंके मङ्गलके लिए है।

श्रीभगवान्‌के मत्स्य-कूर्म वराह-नृसिंहादि अवतारोंकी लीलाओंमें कुछ-कुछ विचित्रता है, जिसकी हमारी क्षुद्र धारणा द्वारा कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिए विभिन्न प्रकारकी समालोचना कर बैठते हैं। किन्तु यथार्थ तात्पर्य श्रीमद्भागवत एवं अन्यान्य शास्त्रोंमें पाया जाता है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलामें अनन्त-विचित्रताएँ हैं। युवावस्थामें भगवान् श्रीरामचन्द्रने ताड़का राक्षसीको बाण द्वारा मार डाला था। किन्तु स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने छः दिनकी शिशु-अवस्थामें पूतनाका स्तन-पान करते-करते उसका प्राण हर लिया था। दूसरे-दूसरे असुरोंका भी उन्होंने अनायास ही वध कर डाला था। उनकी समस्त लीलाओंमें रासलीलाकी विचित्रता परम अद्भुत है। बहुतसे व्यक्ति इसका तत्त्व न जानकर कई प्रकारके गलत सिद्धान्त कर बैठते हैं। बंग-देशमें 'साहित्य-सम्राट्' कहे जानेवाले श्रीबंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायने अपने कृष्णचरित्र' पुस्तकमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी रासलीलाको प्रक्षिप्त बतलाकर श्रीकृष्णचन्द्रको आदर्श नैतिक चरित्रवान् सजानेकी चेष्टा की थी। सुननेमें आता है कि परमाराध्यतम जगद्गुरु श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने बंकिमचन्द्रजीको उसे प्रकाश करनेके लिए मना किया था। किन्तु बंग-साहित्य प्रतिष्ठा-प्राप्त श्रीबंकिम बाबूने उसे प्रकाश कर केवल एक महान् अपयश प्राप्त किया है।

श्रीमद्भागवतमें रासलीलाके अन्तमें यह श्लोक कहा गया है—

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदंच विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥
(१०।३३।३९)

अर्थात् जो व्यक्ति अप्राकृत श्रद्धासे सम्पन्न होकर इस रास-पंचाध्यायमें वर्णित व्रजवधूओंके साथ स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की अप्राकृत क्रीड़ाका वर्णन सुनते हैं या करते हैं, ऐसे धीर व्यक्ति भगवान्‌के पादपद्मोंमें परम भक्ति प्राप्त कर हृदयके रोग रूप जड़ीय काम को दूर करनेमें शीघ्र ही समर्थ होते हैं। अर्थात् कृष्णलीलाएँ समस्त ही चिन्मय हैं। चिन्मय स्वरूपा गोपियोंके साथ पूर्ण चिन्मय (अधोक्षज) श्रीकृष्णचन्द्रजीकी लीलाओंकी श्रद्धापूर्वक अर्थात् चिन्मय तत्त्वका अनुभव प्राप्त करनेके लिए यत्नके साथ सदालोचना करते करते चित्-प्रेमके उदयके परिमाणके अनुसार जड़ासक्ति एवं जड़-कामादि दूर हो जाते हैं। सम्पूर्ण चिन्मय लीलाके उदय होने पर लेशमात्र भी जड़-कामका गन्ध तक नहीं रहता।

आजन्म ब्रह्मचारी परमहंस श्रीशुकदेव गोस्वामीजीने अगणित राजर्षि, ब्रह्मर्षि एवं

देवर्षिसे सुशोभित सभामें विराजमान होकर अवश्यंभावी मृत्युके मुखमें पतित महाराज परीक्षित्‌जीके पारलौकिक कल्याणके लिए जो कुछ वर्णन किया था, वह कदापि प्राकृत नायक-नायिकाकी कामक्रीड़ा नहीं हो सकती। श्रीशुकदेव गोस्वामीजी परीक्षित्‌जीकी वंचना कर उनकी संसार-मुक्तिके लिए प्रतारणा नहीं कर सकते। ब्राह्मणके शापसे मोचनके लिए जिन्होंने प्रायोपवेशन किया था, अगणित ऋषि-मुनियोंके निकट जिन्होंने मरणासन्न व्यक्तिके कर्त्तव्य जाननेकी इच्छा की थी, ऐसे श्रीपरीक्षित् महाराजके निकट श्रीशुकदेव गोस्वामीजीने उस सभामें सभीके विभिन्न मतवादोंका हेयत्व एवं तुच्छता दिखलाकर परम हितकी बातका उच्च कण्ठसे कीर्त्तन किया था। उसमें श्रीकृष्ण-लीला, जो सकल लीलाकी मुकुटमणिस्वरूपा हैं, वह कदापि प्राकृत काम-क्रीड़ाकी कथा नहीं हो सकती। इसलिए श्रीधरस्वामीपाद, जो प्राचीन टीकाकार हैं, उनका कहना है—"ब्रह्मादिजयसंरूढदर्पकन्दर्पदर्पहा। जयति श्रीपति र्गोपीरासमण्डलमण्डितः॥ तस्याद्रास क्रीड़ा-विडम्बनं काम-जयाख्यापनायेति तत्त्वम्। किन्तु श्रृंगार कथा व्यपदेशेन विशेषतो निवृत्तिपरेयं पंचाध्यायीति।" अर्थात् कामके अधिष्ठात्री देवता मदनके प्रभावसे ब्रह्मादि देवता तक कुपथमें परिचालित हुए हैं। इसलिए मदन या कामदेवका गर्व अत्यन्त बढ़ गया था। इसी कामदेव की ताड़नासे देवराज इन्द्रने गौतम-पत्नी अहल्याके पास गमन किया था, चन्द्रने देवगुरु बृहस्पतिकी पत्नी ताराके साथ विहार किया था। किन्तु श्रीपति श्रीकृष्णचन्द्रजीके ऊपर कैशोर-लीलाकालमें भी वे मदन देवता कोई भी प्रभाव विस्तार नहीं कर सके। वहाँ उनका अहंकार चूर्ण-विचूर्ण हो गया। इसलिए रासक्रीडा-विडम्बर काम-जयका प्रकाश करनेके लिए हुआ है। श्रृंगारके व्यपदेश (बहाने)से यह रासपंचाध्याय परम निवृत्तिपर है।

स्वयं भगवान् श्रीश्यामसुन्दरकी इस रासलीलाका श्रद्धापूर्वक अनुक्षण श्रवण एवं कीर्त्तन द्वारा भगवद्‌पादपद्मोंमें पराभक्ति-प्राप्ति द्वारा हृदयरोग रूप काम शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। श्रीभगवानने 'आत्मन्यवरुद्धसौरतः' अर्थात् रमणीसे मिलन होनेपर पुरुषमें जिस भावका उदय होता है, उस भावको सब प्रकारसे अवरुद्ध या वशीकरण कर डाला था। श्रीमद्भागवत (१०।२९।४२) में कहा गया है—'आत्मारामोऽप्यरीरमत्।' वे भगवान् आत्माराम हैं। उनके श्रीपादपद्मोंकी आराधना द्वारा जीव आत्मारामता प्राप्त करते हैं। आत्मामें रमणशील व्यक्ति जड़ीय वस्तुमें रत नहीं होते। जगत्‌के जीव किसी न किसी कामके वशीभूत होकर नाना प्रकारकी काम्य वस्तुओंका भोग करनेके लिए व्यस्त हैं। कोई मनुष्य सब प्रकारसे कामजयी नहीं हो सकता। जो व्यक्ति भोग-कामना का त्याग करते हैं, वे मोक्षकामना या सिद्धिकामनाके अधीन हो पड़ते हैं। किन्तु सब प्रकारसे कामना जय करना हो, तो साक्षात् मन्मथ-मन्मथ श्रीकृष्णचन्द्रजीका श्रीपादपद्म-आश्रय ही एकमात्र उपाय है।

श्रीमद्भागवतमें भी श्रीगोविन्दके श्रीचरण-सेवालाभको ही संसार-निवृत्तिका एकमात्र उपाय स्वरूप कहा गया है। 'आत्मनि यः रमते' इस व्युत्पत्तिके द्वारा प्राप्य अर्थके द्वारा 'आत्माराम' शब्दसे यह जाना जाता है कि जो आत्मामें सम्यक् रमणशील हैं, वे आत्माराम हैं। साधारण जीवको किसी प्रकारका आनन्द उपभोग करना हो, तो शब्द-स्पर्शादि विषयोंके साथ इन्द्रिय-संयोग करना पड़ता है। किन्तु आत्मारामको आनन्द भोग करनेके लिए किसी प्रकारकी बाहरी वस्तुकी आवश्यकता नहीं होती। वे लोग स्वरूपानन्दमें ही परिपूर्ण एवं आनन्दित हैं। आत्मारामगणोंका किसी प्रकारका कार्य भी देखा नहीं जाता। श्रीमद्गीतामें कहा गया है—

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥

जिनकी केवल आत्मामें ही प्रीति है, आत्म स्वरूपानन्दमें जो लोग तृप्त एवं सन्तुष्ट हैं, उनके लिए किसी भी कार्यकी आवश्यकता नहीं होती। साधनके प्रभावसे मनुष्य लोग आत्मारामता प्राप्त कर विषयमुक्त होकर आत्मस्वरूपानन्दमें परिपूर्ण होते हैं। अतएव अखिल ब्रह्माण्डके ईश्वर आत्मारामशिरोमणि श्रीभगवानके लिए किसी प्रकारका विषय सम्बन्ध या कामाधीनता नहीं रह सकती। तथापि वे आत्माराम होकर भी रमण किए थे। वह किस प्रकार किया, यह कहा गया है—

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरिभिर्यथार्भकः
स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः॥
(भा० १०।३३।१६)

क्रीडामें मस्त बालक जिस प्रकार दर्पणमें प्रतिबिम्बित अपनी मूर्तिके साथ क्रीड़ा करते हैं, श्रीभगवान्‌ने भी उसी प्रकार अपनी प्रतिबिम्बस्वरूपा गोपियोंके साथ रमण किया था। श्रीब्रह्म-संहितामें भी कहा गया है—

आनन्दचिन्मयरस प्रतिभाविताभि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥
(५।३७)

अर्थात् आनन्दचिन्मयरसद्वारा प्रतिभावित सभी गोपियोंके साथ जो अखिलात्मास्वरूप आदिपुरुष गोविन्द अपने नित्य अप्रकृत स्वयंरूपसे विहार करते हुए अपने नित्य गोलोकधाममें निवास करते हैं, उनका मैं भजन करता हूँ।

व्रज गोपियोंके साथ स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी जो कान्ता-कान्त भावमयी लीला है, वह कामक्रीड़ा विलास नहीं है, वह ह्लादिनी-शक्तिकी विलास-विचित्रता मात्र है। क्योंकि व्रज देवियाँ उनकी नित्यलीलाकी साक्षात् परिकरस्वरूपा हैं। ब्रह्म-संहितामें और भी कहा गया है—"लक्ष्मीसहस्रशत संभ्रम सेव्यमानं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।" अर्थात् ये व्रजदेवियाँ शत शत लक्ष्मीविशेष हैं। वे सर्वदा संभ्रमके साथ श्रीकृष्णकी सेवामें लगी हुई हैं। स्वयं भगवान्‌ने जिनके साथ लीलाविलास किया है, वे गोपियाँ उनकी ही दारा स्वरूपा या अभिन्नस्वरूपा हैं। इसलिए श्रीचैतन्यचरितामृत (आ० ४।१६६-१७२) में

कहा गया है—

कामेर तात्पर्य निज संभोज केवल ।
कृष्णसुख तात्पर्य प्रेम, त प्रबल ॥
लोक धर्म, वेद धर्म, देह धर्म-कर्म ।
लज्जा, धैर्य, देहसुख,आत्मसुख-मर्म ॥
दुस्त्यज्य आर्यपथ निज-परिजन ।
स्वजनें करये जत ताड़न-भर्त्सन ॥
सर्वत्याग करि' करे कृष्णरे भजन ।
कृष्णसुख हेतु करे प्रेम-सेवन ॥
इहाके कहिये कृष्णे दृढ़-अनुराग ।
स्वच्छ धौतवस्त्रे जैछे नाहि कोन दागे ॥
अतएव काम-प्रेम बहुत अन्तर ।
काम-अंधतमः, प्रेम-निर्मल भास्कर॥
अतएव गोपी गणेर नाहि कामगंध ।
कृष्ण सुख लागि मात्र प्रेमेर संबंध ॥

श्रील जीव गोस्वामी प्रभुपादने अपने क्रमसन्दर्भ-टीकामें लिखा है— अथ ब्रह्मेन्द्राग्निवरुणादीनां दर्पं शमयित्वा कंदर्पस्य दर्पं शमयितुं युगपदनेकरमणीकदम्बसंवलितं रासाख्यं लास्यमारिप्सुर्भगवानेकदा स्वयोगवैभवं प्रादुश्चकार । तत्र रासस्य लक्षणम्—

नर्त्तकीभिरनेकाभिर्मण्डले विचरिष्णुभिः ।
यत्रैको नृत्यति नटस्तद् वै हल्लीचकं विदुः ॥
तदेवेदं तालबन्धगतिभेदेन भूयसा ।
रासः स्यान्न स नाकेऽपि वर्त्तते किं पुनर्भुवि ॥

अर्थात् स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने व्रजमें अवतीर्ण होकर गो-गोप गोपीके साथ विचित्र लीला-रसास्वादन करते हुए ब्रह्ममोहनलीलामें ब्रह्माजीका, गोवर्द्धन-धारण-लीलामें इन्द्रका, दावाग्निमोहन-लीलामें अग्निका एवं नन्द-मोक्षण-लीलामें वरुण का दर्प चूर्ण कर अन्तमें कन्दर्प या कामदेवका दर्प खण्डन करनेके लिए अगणित व्रज गोपियोंसे युक्त रास-नृत्य करनेकी इच्छासे अचिन्त्य महाशक्ति-वैभवका प्रकाश किया। रासके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें कहा गया है—मण्डलाकार नृत्यपरायणा असंख्य नर्त्तकियोंमें यदि कोई नट नृत्य करें, तो उस नृत्यको "हल्लीचक" नृत्य कहा जाता है। वह नृत्य यदि नाना प्रकारके तालों से युक्त एवं नाना प्रकार की गतियोंसे युक्त हो, तो उसे 'रासनृत्य' कहते है। यह रासनृत्य स्वर्गमें देवता लोग भी नहीं जानते। इसलिए पृथिवीके व्यक्तियोंके लिए तो बहुत दूरकी बात है।

अतएव यह रासनृत्य सभीके लिए साध्य नहीं है। श्रीभगवान्के द्वारा दूसरे-दूसरे अवतारोंमें अनन्त लीलाएँ प्रकाश करनेपर भी एकसे अधिक महिषीसे सम्बन्ध नहीं रखा था। इसलिए उन सभी स्वरूपोंसे रासकी कोई बात नहीं आ सकती। एकमात्र स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने ही गोप-रमणियोंके साथ यह नृत्य किया था। इस लीलाकी माधुरीसे स्वयं भगवान्भी आत्महारा(तन्मय) हो जाते हैं। वे यदि छः प्रकारके ऐश्वर्य प्रकाश कर यह लीला करते, तो वह सब प्रकार से माधुर्यमयी नहीं हो सकती थी। उन्होंने समस्त ऐश्वर्यों की बात भूलकर स्निग्ध-शान्त-मनोहर स्वरूप द्वारा गोपियोंके प्रेमके अनुसार उनकी

मनोवासना पूर्ण की है।

तासामतिविहारेण श्रांतानां वदनानि सः।
प्रामृजत् करुणः प्रेम्णा शन्तमेनांग पाणिना॥

करुणामय भगवान्‌ने उनके परम सुखजनक करपल्लव द्वारा रासनृत्यमें परिश्रान्त गोपियोंका वदन मार्जन किया था। गोपियोंने श्रीभगवान्‌के ऐश्वर्यादि स्वरूप भूलकर उनके माधुर्य रसमें डूबकर उनके साथ नाना प्रकार से व्यवहार किया था। श्रीकृष्णने गोपियोंकी मनोवासना पूर्ण करनेके लिए ही वंशीकी ध्वनि द्वारा उनका यमुना-तीर की ओर आकर्षण कर उनके साथ रासक्रीड़ा की थी। यद्यपि वंशीध्वनिसे सारा व्रज मण्डल मुखरित हो उठा था, किन्तु वह ध्वनि मधुर भावपरा गोपियोंको छोड़कर और किसीके कर्णगोचर नहीं हुई।

श्रीकृष्णने जिन सभी गोपियोंके साथ रासनृत्य किया था, उनसे गोपियोंके स्वजन या तथाकथित पति आदियोंने इस लीलाके प्रति किसी प्रकारकी असूया प्रकाश नहीं की। क्योंकि श्रीशुकदेवजीने स्वयं कहा है—

नासूयन् खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया।
मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् दारान् व्रजौकसः॥
(भा० १०।३३।३७)

व्रजवासियोंने श्रीकृष्णकी योगमायाके प्रभावसे अपनी अपनी पत्नीको अपने अपने निकट ही अवस्थित देखा था। इसलिए श्रीकृष्णके प्रति उन्होंने कोई दोषारोप नहीं किया। जो गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णकी नित्य सहचरियाँ हैं, वे कदापि दूसरे प्राकृत पुरुषकी भोग्या नहीं हैं। इसलिए योगमायाने उनके अनुरूप स्त्रीमूर्त्ति का प्रकाश कर उनके निकट रखा था।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्
भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

श्रीहरिभक्ति-माहात्म्य

श्रीनारदजीने कहा—जो मनुष्य हरिपरायण हैं, उसे कोई भी शत्रु, ग्रह आदि कष्ट देनेमें समर्थ नहीं होते। जो व्यक्ति देव-देव जनार्दनके प्रति दृढ़ भक्तिमान हैं, वे सर्व प्रकारके श्रेयः प्राप्त करते हैं। इसलिए हरिभक्ति ही श्रेष्ठ है। जो चरण कृष्ण-मन्दिर में गमन करे, उनकी ही सार्थकता है। जो भुजाएँ हरिपूजामें निरत हैं, वे ही भाग्यशाली हैं। जो आँखें भगवान् जनार्दनका दर्शन करें, वे ही सार्थक हैं। जिस जिह्वासे हरिनामका

उच्चारण हो, उसी जिह्वाको ही यथार्थ जिह्वा कहना होगा। हस्त उत्तोलन कर मैं तीन सत्य कर कहता हूँ कि वेदकी अपेक्षा श्रेष्ठ शास्त्र एवं श्रीकेशवकी अपेक्षा श्रेष्ठ देव और कोई नहीं है। बारम्बार सत्य, हितकर एवं सारगर्भ वाक्य कह रहा हूँ कि इस असार पीड़ित संसारमें केवलमात्र हरिपूजा ही सार है। हरिभक्तिरूप कुठाराघातद्वारा महामोहजनक सुदृढ़ संसारपाश छेदन कर मनुष्य परम सुख पाता है। जिनका चित्त सब समय हरिके ध्यान में निमग्न है, वही सार्थक है। जो वाक्य हरिविषयक हों, उनकी ही सार्थकता है। जो कान हरिकथा सुनने रूप सार वस्तुसे परिपूर्ण है, वे ही सभीके प्रशंसनीय हैं। स्थावर-जंगमात्मक यह संसार विद्युतकी तरह क्षणभंगुर है, ऐसा जानकर श्रीहरिकी अर्चना करनी चाहिए। जो व्यक्ति हिंसा, चोरी, दुःसंग आदिसे रहित एवं यथार्थ सत्य एवं ब्रह्मचर्यपरायण हैं, उनके प्रति वे जगदीश्वर हरि प्रसन्न होते हैं। जो मनुष्य सभी प्राणियों के प्रति दयावान् एवं विष्णुपूजा परायण हैं, उनके प्रति भगवान् हरि प्रसन्न होते हैं। जिनका चित्त भगवत् सत्-कथामें प्रसन्न है, जो सर्वदा सत्-वचन कहे, जो सत्यवादी एवं प्राकृतअहङ्कार रहित हैं, उनके प्रति भगवान् प्रसन्न होते हैं। जो मनुष्य भूख, प्यास या किसी विषयमें कष्ट पानेपर हरिनाम उच्चारण करे, उसके प्रति भगवान् प्रसन्न होते हैं। मनुष्योंकी आधी आयु निद्रामें चली जाती है एवं भोजनादि कार्य, बाल्य, वृद्धावस्था एवं विषय भोगोंमें बहुत समय चला जाता है। अतएव धर्मानुष्ठान कब होगा? बाल्यावस्था या वृद्धावस्थामें हरिसेवामें ठीकसे नहीं होती। इसलिए युवावस्था रहते रहते अहंकार रहित होकर धर्मानुष्ठान करना होगा। परम विपत्ति का आलय, मलादि-परिपूर्ण दूषित व्याधि-मन्दिर रूपी यह शरीर जब अचिरस्थायी है, तब किस लिए सर्वदा इसके लिए पाप कार्य किये जाय? अतएव सर्वदा जनार्दन भगवान् की पूजा करनी चाहिए। मनुष्योंके लिए अभिमान ही सभी प्रकारके सर्वनाशकी जड़ है। अतएव उसका परित्यागकर कामक्रोधादि का दमन कर सब समय श्रीकृष्णकी आराधना कर्त्तव्य है। क्योंकि मनुष्य जन्म बहुत ही दुर्लभ है। कोटि कोटि जन्म दूसरे-दूसरे योनियोंमें भ्रमण करनेके पश्चात् बड़ी कठिनाईसे मनुष्यत्व प्राप्त होता है। उसमें भी बहुत भाग्यसे भगवत्पूजामें रति होती है। दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर जो व्यक्ति एकबार भी हरिपूजा न करे, उसकी अपेक्षा और कौन अज्ञानी एवं मूर्ख हो सकता है? जो व्यक्ति दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर श्रीहरिकी पूजासे विमुख हो, उनमें विवेक शक्ति कहाँ है? जब जगन्नाथ हरिकी आराधना करनेपर वे इच्छानुसार फल प्रदान करते हैं, तब कौनसा व्यक्ति संसारानलसे सन्तप्त होकर भी उनकी पूजा नहीं करेगा? विष्णु भक्तिसे युक्त होने पर रागद्वेषरहित चाण्डाल भी मुनि एवं विप्रोंसे भी श्रेष्ठ है एवं ब्राह्मण होकर भी यदि विष्णुभक्ति रहित हो तो वह चण्डालसे भी अधम है। अतएव कामादिका परित्याग कर अव्यय श्रीहरिकी

सेवामें नियुक्त होना चाहिए। क्योंकि वे सर्वमय हैं। इसलिए उनके सन्तुष्ट होने पर सारा जगत् सन्तुष्ट होगा। जिस प्रकार हाथी के पदचिह्नमें सभी प्राणियोंके पदचिह्न विलीन होते हैं, उसी प्रकार सारा चर-अचर मय जगत् उन्हीं भगवान् विष्णुमें विलय प्राप्त होता है। मनुष्य-जीवनमें जन्म-मृत्यु ही सबसे बड़े संकट हैं, जो केवल एकमात्र हरिसेवा द्वारा ही दूर होते हैं। भगवान् जनार्दनका ध्यान, स्मरण, स्तुति या नमस्कार करनेपर संसार बन्धन दूर हो जाता है। जिनके नामोच्चारण मात्रसे महापातक दूर हो जाते हैं एवं जिनकी पूजा करनेपर मोक्षपदकी प्राप्ति होती है, ऐसे हरिनाम के रहते हुए भी मनुष्य बारम्बार संसार-यातना भोग करते हैं, इससे अधिक और क्या आश्चर्यका विषय है? जब तक इन्द्रियाँ शिथिल न हों, शरीर व्याधिग्रस्त न हो, जब तक धर्माचरणमें असमर्थ होकर यमदूतोंके अधीन न हों, तभी तक हरि पूजा सब प्रकारसे कर लेनी चाहिए। सभी प्राणियों ही माताके गर्भसे निकलते ही मृत्युके घोर कवलमें पड़ गये हैं, यह जानकर धर्माचरण करना होगा। यह मनुष्य शरीर निश्चय ही एकदिन नष्ट होगा, यह जानकर उस अविनाशी भगवान्‌का आराधना करनी चाहिए। मैं हाथ उठाकर त्रिसत्य कर कहता हूँ कि अहंकारका परित्याग कर उस चक्रपाणि भगवान्‌की सेवामें नियुक्त रहें। सब प्रकारसे विष्णु भगवान्‌की पूजामें नियुक्त होकर असूया एवं अधीरताका परित्याग करें। क्रोध मनुष्योंके मनो दुःखका मूल, संसार-बन्धनका कारण एवं धर्म नाशकारी है। अतएव क्रोधका परित्याग करना होगा। जन्मका मूल-कारण काम है, कामसे पापका उदय होता है एवं यही यशका विनाशकारी है। अतएव कामका परित्याग करें। मात्सर्य सब दुःखोंका कारण एवं नरकका द्वार होनेके कारण उसका परित्याग करना कर्त्तव्य है। ममता मनुष्योंके बन्धन एवं मुक्ति का कारण है। अतएव भगवान्‌के प्रति उसे अर्पण कर सुखी होना कर्त्तव्य है। मैं सच-सच कह रहा हूँ कि अच्युत, अनन्त एवं गोविन्द ऐसे नामोच्चारणसे भयभीत होकर सारी व्याधियाँ दूर भाग जाती हैं। जो व्यक्ति सब समय हे नारायण! हे जगन्नाथ! हे वासुदेव! हे जनार्दन! ऐसा नामोच्चारण करें, वे सर्वत्र वन्दित होते हैं। ब्रह्मादि देवता भी हरिभक्तोंका प्रभाव जान नहीं पाये। दुरात्मा व्यक्ति हृदय कमलमें स्थित भगवान् विष्णुको जाननेमें समर्थ नहीं होते। जो व्यक्ति श्रद्धावान् हैं, उनके प्रति ही भगवान् श्रीहरि प्रसन्न होते हैं। ऐसे व्यक्ति बान्धव एवं धन सम्पत्तिसे प्रसन्न नहीं होते। यह देह पूर्वजन्म के पातकसे ही उत्पन्न हुआ है एवं पाप कर्ममें ही यह लिप्त होता है, यह जानकर सर्वदा विष्णुपूजामें लगे रहना चाहिए। जो शरीर जन्म-क्लेशहारी भगवान् श्रीहरिके उद्देश्यसे प्रणत न हो, वह केवल पापका भण्डार है। सृष्टि दो प्रकारकी है—दैव एवं आसुरी। जो व्यक्ति हरिभक्ति विहीन हैं, वे लोग असुर प्रकृतिके हैं एवं जो व्यक्ति हरिभक्तिपरायण हैं, वे दैवी प्रकृतिके हैं। अतएव हरिभक्ति परायण मनुष्य लोग सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वत्र विख्यात हैं। क्योंकि हरिभक्ति जगतमें दुर्लभ

है। जो व्यक्ति संसार-तापसे सन्तप्त हैं, उनके लिए भगवान हरि ही परम गति हैं। अधिक क्या, भगवान् हरिके नाम श्रवण मात्रसे मनुष्य लोग परम-पद प्राप्त करते हैं।

(बृहन्नारदीय-पुराणसे)

प्रचार-प्रसंग

परमाराध्यतम श्रीश्रीलगुरुपादपद्मका पञ्चम-वार्षिक विरह-महोत्सव

समस्त विश्व व्यापी श्रीगौड़िय मठोंके संस्थापक, नित्यलीला-प्रविष्ट जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरके परमप्रेष्ठ अन्तरंग प्रियजन, श्रीगौड़ीय-वेदान्त-समिति के प्रतिष्ठाता-सभापति-आचार्य, श्रीस्वरूप रूपानुगवर नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका पंचम वार्षिक विरह-महोत्सव श्रीसमितिके मूल मठ एवं सभी शाखा मठोंमें गत २५ आश्विन, १२ अक्टूबर, शुक्रवारको शरद्-पूर्णिमाकी पुण्य-तिथिमें बड़े ही समारोहपूर्वक मनाया गया है। उक्त दिवस समितिके सभी मठोंमें श्रीगुरुतत्त्वकी विशद आलोचनाके साथ श्रीगुरु-महिमा कीर्त्तन, इन महापुरुष-शिरोमणि एवं आचार्य-केशरीवरके अप्राकृत जीवन-चरित्र, उनके विविध वैशिष्ट्य, अनिमर्त्य शिक्षाएँ आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया।

मूल मठ, श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें यह उत्सव श्रीसमिति के वर्त्तमान उप-सभापति, संयुक्त-सम्पादक एवं श्रीभागवत पत्रिकाके सम्पादक परम पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीलनारायण महाराजकी अध्यक्षता एवं विशेष देखरेखमें बड़े ही सुन्दर रूपसे मनाया गया है। इस उत्सवमें समिति अन्यान्य संन्यासी-महोदय, ब्रह्मचारीवृन्द एवं बहुतसे गृहस्थ भक्त भी उपस्थित थे। उस दिन आयोजित विशेष धर्म-सभामें परम पूज्यपाद उप-सभापति महाराज, अन्यान्य सन्यासी महोदय, ब्रह्मचारी आदियोंने नित्यलीला-प्रविष्ट परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुपादपद्मकी अलौकिक महिमा एवं अतिमर्त्य अप्राकृत चरित्रकी विभिन्न पहलुओं पर हृदय-स्पर्शी प्रकाश डाला। उस दिन उपस्थित अगणित श्रद्धालु सज्जनों एवं पूजनीय वैष्णवोंको श्रीश्रीगुरु-गौरांग राधाविनोदबिहारीजीका विचित्र नाना व्यंजनयुक्त सुस्वादु महाप्रसाद

सेवन कराया गया।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें उक्त दिवस प्रातःकाल मंगल-आरति, श्रीगुरु-वन्दना, श्रीगुर्वाष्टक, श्रीगुरु-परम्परा, पंच-तत्त्व आदि कीर्त्तनके पश्चात् विरह-सूचक पदावली एवं महामन्त्रका कीर्त्तन किया गया। उसके पश्चात् परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुपादपद्म की अप्राकृत महिमा एवं अतिमर्त्य-चरित्र पर प्रकाश डाला गया। दोपहरके कुछ पहलेसे पुनः कीर्त्तन प्रारम्भ हुआ। समितिके सेवकों की विशेष प्रार्थना पर जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रील प्रभुपादजी (श्रीश्रील भक्ति सिद्धांत सरस्वती गोस्वामी ठाकुर) के कृपा-प्राप्त परम पूजनीय प्रपूज्यपाद श्रीश्रील भक्तिसौरभ भक्तिसार महाराज, परम पूजनीय श्रीपाद गोविन्ददास बाबाजी महाराज एवं अन्यान्य वैष्णवगण उपस्थित हुए। आयोजित विशेष-सभामें समितिकी ओरसे श्रीपाद श्रीमद् भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज एवं श्रीपाद श्रीमद् गोराचाँददास बाबाजी महाराज—इन दोनों वक्ता-महोदयोंने परमाराध्यतम श्रीश्रीलगुरुपादपद्मकी अतिमर्त्य-गुणावली एवं महिमाका कीर्त्तन किया। तत्पश्चात् परम पूजनीय प्रपूज्यपाद श्रीश्रील भक्तिसौरभ भक्ति-सार महाराज अपनी स्वभाव-सुलभ भाषामें, किन्तु बड़े ही मार्मिक एवं सुन्दर शब्दोंमें अस्मदीय परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुपादपद्मकी अलौकिक श्रीगुरु-निष्ठा, अतिमर्त्य-चरित्र, अनन्त- वैशिष्ट्य, अभूतपूर्व शिक्षा एवं सामर्थ्य आदि विषयोंपर विशद रूपसे प्रकाश डाला। सभाके अन्तमें परमाराध्यतम अस्मदीय श्रीश्रील गुरुपादपद्मकी आरति सम्पन्न की गई। तत्पश्चात् सभी श्रीगुरुसेवकों एवं पूजनीय वैष्णवोंने इन महापुरुष-शिरोमणिके पादपद्मोंमें पुष्पांजलि अर्पण की। तत्पश्चात् श्रीश्रीगुरु-गौराँग-गान्धर्विका गिरिधारी श्रीश्रीराधा विनोदबिहारीजी के भोग-राग एवं मध्याह्न आरति सम्पन्नकी गई। उसके पश्चात् उपस्थित सभी पूजनीय वैष्णवों, श्रद्धालु सज्जनों आदियोंको विविध व्यञ्जनोंसे परिपूर्ण नाना प्रकारके महाप्रसादका सेवन कराया गया।

• शामको आयोजित सभामें श्रीपाद कुंजबिहारी ब्रह्मचारीजी, श्रीरामगोपाल ब्रह्मचारी, श्रीमहामहेश्वर ब्रह्मचारी, श्रीकालाचाँद ब्रह्मचारी, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त पद्मनाभ महाराज आदि वक्ताओंने परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुपादपद्मके श्रीचरण-कमलोंमें अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए उनके अप्राकृत चरित्र, विविध वैशिष्ट्य अतिमर्त्य गुणावली आदि विषयोंपर हृदयग्राही प्रकाश डाला। यह उत्सव समितिके सभी सेवकोंके उत्साह एवं अक्लान्त परिश्रमसे बड़ी सफलतासे सम्पन्न हो गया।

श्रीश्रीदामोदर-व्रत एवं श्रीअन्नकूट-महोत्सव

पूर्व पूर्व वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी समितिके अधीनस्थ मूल मठ एवं सभी-शाखा मठोंमें श्रीचातुर्मास्य-व्रत एवं उसके अन्तर्गत श्रीदामोदर-व्रत, श्रीकार्तिक-व्रत, श्रीउर्ज्ज-व्रत या

श्रीनियम सेवाव्रतका अनुष्ठान सम्यक् प्रकारसे पालन किया गया है। यह अनुष्ठान २५ आश्विन, १२ अक्टूबर, शुक्रवार, शरद् पूर्णिमा से प्रारम्भ होकर १४ कार्त्तिक, १० नवम्बर, शनिवार, कार्त्तिक पूर्णिमा तक पालन किया गया है। श्रीधाम नवद्वीपमें यह अनुष्ठान विशेष समारोहपूर्वक मनाया गया है।

श्रीकेशवजी, गौड़ीय मठ, मथुरामें भी यह अनुष्ठान विशेष समारोहपूर्वक मनाया गया है। प्रातःकाल श्रीगुरु-वन्दना श्रीगुर्वष्टक श्रीगुरुपरम्परा, श्रीपंचतत्त्व, स्वयं भगवती श्रीमती राधिकाजीकी अचिन्त्य महिमासूचक विविध पदावली, श्रीदामोदराष्टकम्, महामंत्र आदि कीर्त्तनके पश्चात् त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त पत्तनाम महाराज श्रीदामोदराष्टकम्का परमाराध्यतम श्रीश्रील सनातन गोस्वामीपाद विरचित टीका एवं अन्वय आदिके साथ नियमित रूपसे पाठ करते थे। अपराह्णको जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरके कृपाप्राप्त परम पूजनीय प्रपूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रील भक्तिभूदेव श्रौती महाराज श्रीब्रह्म-संहिता, श्रीशिक्षाष्टकम् आदिका बड़े ही सुन्दर रूपसे पाठ करते थे। सायंकाल आरति एवं कीर्त्तन आदिके पश्चात् श्रीपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धका पाठ करते थे।

उक्त अनुष्ठानके अन्तर्गत १० कार्त्तिक, २७ अक्टूबर, शनिवार, कृष्ण-प्रतिपदाको श्रीगोवर्द्धन-पूजा एवं श्रीअन्नकूट-महोत्सव श्रीसमितिके मूलमठ एवं सभी शाखा मठोंमें बड़े ही समारोहपूर्वक मनाया गया है। श्रीधाम नवद्वीपमें यह उत्सव सभी मठवासी सेवकोंके उत्साह एवं अक्लान्त परिश्रमसे बड़े ही धूमधामसे मनाया गया है। इस महोत्सवमें श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-श्रीश्रीराधाविनोदबिहारीजी को अर्पित छप्पन व्यंजन एवं षड्रसयुक्त सुस्वादु महाप्रसादका हजारों सज्जनोंने सेवन किया।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें पूर्वाह्ण में श्रीगुरुदेव श्रीश्रीगिरिराजजी गोवर्द्धन, श्रीगोवर्द्धनधारी गोपाल, श्रीराधाविनोद बिहारीजीका विधिवत् अर्चन एवं अभिषेक आदि सम्पन्न किये गये। दोपहरके पश्चात् श्रीश्रीगुरु-गौरांग-श्रीश्रीराधाविनोद बिहारीजी को असंख्य व्यंजनयुक्त सुस्वादु भोज्य-सामग्री अर्पण की गई। इसी अवसरमें परम पूजनीय प्रपूज्यचरण त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रील भक्तिभूदेव श्रौती महाराजने श्रीगोवर्धन-पूजा एवं श्रीअन्नकूटके माहात्म्य पर परमाराध्यतम श्रील जीव गोस्वामीपाद विरचित श्रीगोपालचम्पू ग्रन्थके आधारपर प्रकाश डाला। भोग-राग एवं आरतिके पश्चात् निमंत्रित-अनिमंत्रित सभी सज्जनों एवं पूजनीय वैष्णवोंको विचित्र महाप्रसादका सेवन कराया गया। नाना प्रकारकी असुविधाओंके बीचमें भी यह उत्सव मठवासी सेवकोंके अटूट परिश्रम, अदम्य उत्साह एवं सुन्दर परिचालना से सुष्ठु प्रकारसे सम्पन्न हुआ है।

जगद्गुरु श्रीश्रील १०८ श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराजका विरह-महोत्सव

श्रीश्रीदामोदर-व्रतके अन्तर्गत २० कार्त्तिक, ६ नवम्बर, मंगलवारको श्रीउत्थान एकादशी तिथिमें जगद्गुरु परमाराध्यतम श्रीश्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजका तिरोभाव-महोत्सव समितिके सभी मठोंमें बड़े ही समारोहपूर्वक मनाया गया है। उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें सबेरे एवं शामको इन महापुरुष-शिरोमणि एवं महाभागवतप्रवरके विरह-सूचक विविध कीर्त्तन किए गए एवं उनके अतिमर्त्य चरित्र एवं अप्राकृत अलौकिक व्यक्तित्वकी विभिन्न पहलुओंपर विशद प्रकाश डाला गया।

—निजस्व संवाददाता

'गौड़ीय' का तात्पर्य

भारतवर्षके उत्तरमें, हिमालयके दक्षिण में, विन्ध्य पर्वतके उत्तरी भागको 'आर्यावर्त्त' कहा जाता है। उसी आर्यावर्त्तको पाँच प्रदेशों में विभाग किया गया था, जो 'गौड़' कहलाते थे। पाँच गौड़ इस प्रकार हैं— (१) सारस्वत, (२) कान्यकुब्ज (लक्ष्मणावती), (३) मध्यगौड़, (४) मैथिल एवं (५) उत्कल। प्राचीनकालमें सूर्यवंशीय महाराजा मान्धाता के 'गौड़' नामक एक दौहित्र (कन्याके पुत्र) बंगालमें राजत्व करते थे। अतएव उनके नाम के अनुसार भी बंगालका नाम 'गौड़' पड़ा। विशेषकर बंगदेशकी राजधानीको 'गौड़' या गौड़पुर' कहा जाता था। बंगदेशीय भक्तोंको इसलिए 'गौड़ीय-भक्त कहा जाता है। मनुका कहना है कि पूर्व समुद्रसे लेकर पश्चिम समुद्र तकका भूभाग ही आर्यावर्त्त है। पीछे आर्यावर्त्तके पूर्व भागको 'गौड़' कहनेकी प्रथा चल पड़ी। श्रीनवद्वीप नगरको गौड़देशकी केन्द्रभूमि कहकर आदि बंगीय साहित्यमें उल्लेख है। श्रीगौड़देशकी राजधानी नवद्वीप या श्रीमायापुरी थी। इसलिए गौड़देशकी राजधानी होनेके कारण नवद्वीप नगरमें आविर्भूत स्वयं भगवान् श्रीश्रीगौरसुन्दरको गौड़ देशीय लोग उनका एकमात्र उपास्य जानते हैं। जो व्यक्ति आर्यावर्त्तके अधिवासी नहीं हैं, वे भी

श्रीश्रीचैतन्यमहाप्रभुके चरणाश्रित होकर अपनेको 'गौड़ीय' कहकर परिचय देते हैं। श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने अपने अनुगत उनके अभिन्न स्वरूप श्रीलस्वरूप दामोदर गोस्वामी जीको 'गौड़ीयोंका मालिक' कहा है। साधारण रूपसे 'गौड़ीय' कहनेपर चैतन्य महाप्रभुके भक्तोंको या उनके चरणाश्रित व्यक्तियोंको ही समझा जाता है। इसलिए 'गौड़ीय' शब्दके मुख्यार्थमें गौड़ीय वैष्णवोंको ही जानना होगा। जैसे 'पंकज' कहने पर 'कमल' को ही जाना जाता है, यह भी वैसे ही है। अतएव अपनी स्तवावलीमें परमाराध्यतम श्रीलरघुनाथदास गोस्वामी पादने भी 'श्रीशचीसूनुष्टकम्' में कहा है—

निजत्वे गौड़ीयान् जगति परिगृह्य प्रभुरिमान्
हरेकृष्णेत्येवं गणन-विधिना कीर्त्तयत भोः।
इतिप्रायां शिक्षां जनक इव तेभ्यः परिदिशन्
शचिसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः॥

अर्थात् जिन्होंने मेरे स्मरण-पथमें सर्वदा विराजमान गौड़ीय भक्तजनों को संसारमें अपने आत्मीय रूपसे स्वीकार कर संख्या रखवा कर उनके द्वारा 'हरे कृष्ण' महामन्त्र का कीर्त्तन करवाया था एवं जो गौड़देशके व्यक्तियोंको पिता की तरह इस प्रकार प्रिय शिक्षा उपदेश किये थे, ऐसे श्रीश्रीशचीनन्दन गौरचन्द्र क्या फिरसे मेरे नयनगोचर होंगे?

यहाँ 'गौड़ीय' शब्दका वही अर्थ किया गया है, जैसा कि इस क्षुद्र लेखके आरम्भ में किया गया है। अतएव 'गौड़ीय' कहनेसे श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके अनुगत भक्तोंको ही जानना होगा।

इसमें एक और विशेषता यह भी है कि जब श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु दक्षिण देश गये थे, उस समय वे केवल 'उडुपी' में ही भगवान् श्रीकृष्णकी श्रीमूर्त्ति देख पाये। एक और बात वे यह देख पाये थे कि 'उडुपी' के मठके अधिकारी, जो कि श्रीश्रीमध्वाचार्यजीके अनुगत एवं उत्तराधिकारी थे, भगवान् श्रीकृष्णका 'नित्य सच्चिदानन्द विग्रहत्व' एवं 'उनकी नित्य सेवा' स्वीकार करते थे। अतएव श्रीश्रीमन्महाप्रभुजीने कृपा कर श्रीब्रह्म-सम्प्रदायके आचार्य परमाराध्यतम श्रील मध्वाचार्यपादको अपने सम्प्रदायका गुरु कहकर अंगीकार किया। परमाराध्यतम श्रील मध्वाचार्यपादको श्रीआनन्दतीर्थ पूर्णप्रज्ञ या 'श्रीगौड़ पूर्णानन्द' भी कहा जाता था। अतएव उनके नामानुसार एवं उनके विचार-सिद्धान्तको स्वीकार करने एवं उनके अनुगत होनेके कारण भी श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके आश्रित श्रीरूपानुग वैष्णवोंको 'श्रीगौड़ीय वैष्णव या 'श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय वैष्णव' कहा जाता है।

—सम्पादक

—卐—

श्रीजन्माष्टमीपर दार्शनिक आलोचना

(गताङ्क, पृष्ठ १२० से आगे)

इसलिए वृक्षका सद्से विलक्षणत्व प्रस्तर या पत्थरका मिथ्यापन नहीं बतलाता। इस प्रकार एक सद्वस्तुकी दूसरी सद्वस्तुसे विलक्षणता स्वतःसिद्ध या स्वाभाविक है। इसलिए सद्से विलक्षणत्वको मिथ्यापनका अनुमापक कहनेपर सिद्ध वस्तुकी साधनता कहनी होगी।

(२) असद् विलक्षणत्व हेतु भी मिथ्यापन का मापकारी नहीं है। क्योंकि असद् विलक्षणत्वसे हमारे अत्यन्त अभावको ही नहीं बतलाता। अत्यन्त अभावका विचार मायावादियोंका ही सिद्धान्त है। इसलिए प्रपञ्चको अत्यन्त असद् कहा नहीं जा सकता। इसलिए प्रपञ्चमें असद्का प्रतियोगी भाव देखा जा रहा है।

(३) अनिर्वचनीय कहकर प्रपञ्चको मिथ्या नहीं ठहराया जा सकता। जगत्को जो व्यक्ति सत्य कहकर स्वीकार करते हैं, वे लोग उसे अनिर्वचनीय नहीं कहते। क्योंकि इस विशेषणकी अप्रसिद्धिके कारण शब्द-प्रयोग में उद्भूत दोष आ जाता है। यदि मायावादियों द्वारा कहे जानेवाले 'मिथ्यापन' को 'अनिर्वचनीय' विशेषण द्वारा प्रकाश करे, तो उस 'अनिर्वचनीय' विशेषण द्वारा विशिष्टता प्राप्त करनेके कारण 'अनिर्वचनीय' शब्दकी निरर्थकता सिद्ध होती है। इसलिए 'अनिर्वचनीय' शब्दके द्वारा मायावादी व्यक्ति जो तात्पर्य प्रकाश करना चाहते हैं, वह बिना इच्छाके भी उस शब्दके द्वारा ही उद्दिष्ट हो जानेके कारण जगत्की सत्यताका प्रतिपादन हो रहा है। इसलिए अविद्याका जो तात्पर्य कहा गया है, वही अविद्याके स्वरूप-मिथ्यापनका खण्डन कर रहा है।

पुनः यदि सत् एवं असद्से भिन्नता ही अनिर्वचनीय हो, अर्थात् अनिर्वचनीयताको पृथक् रूपसे मिथ्यापनका कारण कहा न जाय, तो ऐसा होनेपर केवल असद्भेद कहनेसे जिस अर्थको उद्देश्य किया जाय, उसके साथ अनिर्वाच्यत्वको स्वीकार करनेपर ब्रह्मको भी मिथ्या वस्तुकी तरह अनिर्वाच्य या अवर्णनीय कहना होगा। ब्रह्ममें इस प्रकारके अनिर्वाच्यत्व के लिए आपत्ति होनेके कारण सद्भिन्न कहा गया है। किन्तु निर्धर्मक ब्रह्ममें यदि असद्भेद रूप अभावात्मक धर्म न रहे, तो सद्भेद कहने की भी कोई आवश्यकता नहीं है।

ब्रह्म ज्ञानस्वरूप है, एवं यह मिथ्या प्रपञ्चका ज्ञान परिवर्त्तनशील है। इसलिए ज्ञानकी परिवर्त्तनशीलता ही मिथ्यापन है, ऐसा कहना ठीक नहीं होगा। क्योंकि बाल्यावस्थाका ज्ञान यौवनावस्था प्राप्त होनेपर

निवृत्त या स्तब्ध हो जाता है। यह बात सभी व्यक्तियोंद्वारा स्वीकृत, अनुमान एवं अनुभव द्वारा सिद्ध है। बाल्यज्ञानका निवर्तन (कार्य-समाप्ति) हो जानेके कारणसे ही उसे मिथ्या कहा नहीं जा सकता। क्योंकि निवर्तन कार्य प्रतियोगिताके कारण सत्त्वत्व या सत्ताका प्रमाणक सिद्ध हो रहा है। इसलिए ज्ञानका निवर्त्यत्व या ज्ञानकी कार्य-समाप्ति सत्ताका अविरोधी होकर दूसरा अर्थ प्रकाश कर रही है। अर्थात् उस शब्दको कहकर केवलाद्वैतवादी जो कहनेकी इच्छा रखते हैं, वह प्रकाशित न होकर विपरीत भाव प्रकाशित होनेके कारण दूसरा अर्थ प्रकाश होकर सत्-सम्प्रदायका परिपोषक हो रहा है।

'ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है' कहनेपर ब्रह्म सत् है एवं उनका अभाव जगत् मिथ्या है, ऐसा समझा जायगा। किन्तु सत्ताके अभाव को ही मिथ्या कहा नहीं जा सकता। क्योंकि निर्धर्मक ब्रह्ममें सत्ता रूप धर्मका अभाव देखा जाता है। उससे ब्रह्म भी मिथ्या हो पड़ता है। यदि कहा जाए कि ब्रह्म निर्धर्मक होनेके कारण उसमें सत्ताका विरोधी भाव नहीं है, वह भी असङ्गत है। क्योंकि यदि निर्धर्मकत्व रूप कारण ब्रह्ममें रहे, तो निर्धर्मकत्वरूप धर्म प्राप्ति होनेके कारण उस शब्दकी हानि हुई। और यदि निर्धर्मकत्वरूप कारण यदि ब्रह्ममें न रहे, तो ब्रह्ममें स्वधर्मकी प्राप्ति हुई। इसलिए निर्धर्मकरूप कारण रहे या न रहे, दोनों अवस्थाओंमें ही केवलाद्वैतवादीकी विपदापत्ति देखकर ब्रह्म भी धार्मिक हो गये।

फिर ब्रह्म निर्धर्मक होनेके कारण सद्रूपत्व भी ब्रह्ममें नहीं है, यदि ऐसा कहा जाय, तो सत्त्वधर्ममें भी सत्त्व नहीं होनेके कारण वह भी सद्रूप नहीं हो सकता। इसलिए जिसमें सत्त्वधर्म नहीं है, वह सद्रूप नहीं है, ऐसी बात भी संगत नहीं है। ऐसे नियमसे सत्त्वधर्ममें दोष आ जाता है। इसको छोड़कर सत्त्व धर्म स्वीकार करनेपर अर्थात् सद्रूपमें सद्धर्म अस्वीकार करनेपर आत्माश्रय या स्वाश्रय-दोष होता है। इस प्रकार यदि केवलाद्वैतवादी विचार उठाये, तो वह भी विचारमें भी युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि वस्तु गुणोंके द्वारा व्यक्त है, गुण भी उसके गुणत्वके द्वारा प्रकाशित है, यह अप्रमाणिक नहीं है। धर्मका भी धर्म है। धर्मी जिस प्रकार धर्मके द्वारा परिचित होता है, उसी प्रकार धर्म भी उसके धर्मके द्वारा परिचित होता है। धर्मका धर्म स्वीकार करनेपर स्वाश्रय या आत्माश्रय दोष नहीं होता। प्रमाणके अभावके कारण ही स्वाश्रय एक दोष है। किन्तु प्रमाणिक होनेपर वह दोष नहीं हैं। "सत्त्वं सत्" कहनेपर सत्त्व ही सत् समझा जाता है। इसलिए सत्का धर्म रहने पर सत्त्वका भी धर्म रहेगा। उसमें स्वाश्रय दोष नहीं हो सकता। बल्कि सत्त्वमें भी सत्त्व धर्म है, यही प्रमाणित होता है। सत्त्वधर्म ही सत् है। यदि सत्त्व धर्म नहीं हैं, तो 'सत्' भी नहीं है। आधार जिस प्रकार आधेय लेकर होता है एवं आधेय भी आधेयता शून्य नहीं है। आधेयता नहीं है, कहनेपर आधार के अस्तित्वकी हानि होगी। यह न्यायसिद्ध

एवं स्वाश्रय-दोष-रहित है। आधेयता न रहने पर आधेय रहेगा एवं आधेय न रहने पर आधार रहेगा, ऐसा कहना केवल वागाडम्बर या वितण्डा मात्र है। इसलिए ब्रह्म निर्धर्मक होनेके कारण उसमें सत्वधर्म नहीं है एवं सत्व धर्म न रहनेके कारण ब्रह्म 'सद्रूप' भी नहीं हुए।

केवलाद्वैतवादी लोग प्रपंचको मिथ्या कहते हैं, यह पहले ही कहा गया है। किन्तु यह मिथ्यापन सत्य है या मिथ्या है? ऐसा प्रश्न करनेपर वे किसी ओर भी नहीं खड़े हो सकते। क्योंकि देखा जाता है कि दोनों ओर नितान्त असंगत होने के कारण मिथ्यापन नहीं रह पाता। क्योंकि मिथ्यापनको सत्य कहने पर ब्रह्मके अद्वयत्वकी हानि होती है। मायावादियोंका कहना है कि केवलमात्र ब्रह्म ही सत्य है और सब मिथ्या हैं। इसलिए मिथ्यापन यदि सत्य हो, तो सत्य दो हो जाने के कारण ब्रह्मकी केवलताकी हानि होती है एवं प्रपंच ब्रह्मके तुल्य या उसके समान हो पड़ता है। इसलिए इस मतानुसार मिथ्यापन को सत्य कहा नहीं जा सकता। यदि मिथ्यापन को मिथ्या कहा जाय, तो भी संगत नहीं है। क्योंकि जिसका मिथ्यापन मिथ्या है, वह सत्य ही होगा। इसलिए मिथ्यापन सत्य ही हो या मिथ्या ही हो, प्रपंच सत्य ही होरहा है।

इस प्रकार केवलाद्वैतवाद की व्यवहारिकता एवं पारमार्थिकता मिथ्यापन एवं सत्य लेकर सूक्ष्मसे सूक्ष्म रूप से आलोचना करने पर देखा जाता है कि उसका जितना भी इंद्रत्व (काठिन्य या वज्रगंभीरता) क्यों न हो, वह गुरुत्वकी विज्ञता रूप पत्नीहरण करनेके कारण वैष्णवोंकी अभिशाप-युक्ति द्वारा सहस्र-गुह्यत्व (जननेन्द्रियत्व) प्राप्त कर निर्लज्ज की तरह जीवन धारण कर रही है। ऐसे कथनसे कटाक्ष कर यदि केवलाद्वैतवादी कहे कि इन्द्रत्वका सहस्र गुह्यत्व परिवर्तित होकर सहस्र नेत्रत्व हुआ था। उसमें भी विष्णु-वैष्णोंका पदावलेहन या पदाश्रय ही मूल कारण है। परम दयालु कृष्ण-कार्ष्ण असुरोंका विनाश कर भी उनके प्रति दया-परवश होकर मुक्ति दिया करते हैं। कंस कृष्ण-विरोध करनेपर भी कृष्णने कृपा कर उसे सायुज्य मुक्ति दी थी। इस प्रकारकी मुक्तिमें मायावादीके मतानुसार सहस्र-नेत्रत्व रहने पर भी उसके मूलमें सहस्र गुह्यत्व रहने के कारण वैष्णव लोग उसे अत्यन्त घृणित एवं तुच्छ जानकर थूत्कार प्रदान करते हैं।

ब्रह्मकी अविद्या ग्रस्तताके कारण जीव साध्य हो रहा है। घटाकाश हीउसका उदाहरणस्थल है। उदाहरण का विश्लेषण करने पर देखा जाता है कि घटको एक स्थानसे दूसरे स्थान पर ले जाने पर पहले स्थानका घटावृत आकाश दूसरे स्थानके घटावृत आकाशके साथ एक नहीं है। क्योंकि पहले स्थानका घटावृत आकाश परित्याग हो जानेके कारण ही दूसरे स्थान के घटने दूसरे स्थानके आकाशको परिच्छिन्न कर रखा है। किन्तु घटाकाश जीव होने पर या घटत्व ही जीवत्व होने पर ऐसा दोष होता है कि जीव एकस्थानसे दूसरे स्थानमें जाने पर देहके भीतर वर्त्तमान आत्माको पूर्वस्थानका परित्याग कर ही दूसरे स्थानमें जाना होता है,

किन्तु वह प्रमाण सिद्धि हो रही है। यथापूर्व अर्थात् पहले स्थानमें अवस्थान कर मैंने जो चिन्ता की थी, या जो कर रहा था, दूसरे स्थानमें आकर भी उसकी पुनः आलोचना एवं पहले किए गए कार्योंका स्मरण करपा रहा हूँ। इससे ऐसा प्रतिपन्न होता है कि जो आत्मा पूर्वस्थानमें थी, वही आत्मा ही दूसरे स्थानमें भी वर्त्तमान है। इसलिए घटत्व ही जीवत्व नहीं है।

यह भी देखा जाता है कि घटके भग्न होने पर घटावशेषसे घटाभाव रूप धर्म आश्रित रूपसे रहता है। घटावशेष घटाभाव हो रहा है। उसी प्रकार समस्त वस्तुओंका अभाव धर्म भी ब्रह्म में रहने के कारण ब्रह्म अभाव-धर्म विशिष्ट हुए। इसलिए ब्रह्म निर्धर्मक न होकर सधर्मक हुए। और भी देखा जाता है यदि अभाव-धर्म अद्वैतका हानिकारक न हो, तो ब्रह्माभाव-धर्म ब्रह्ममें रहनेके कारण ब्रह्म मुक्त हुए, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु उसमें मुक्तत्व-धर्म-विशिष्टता आ पड़ी। क्योंकि बुद्धिमान्मात्र ही मुक्त पुरुषमें बद्ध भावका अभाव स्वीकार करेंगे। यदि मुक्तत्व धर्म नहीं है, ऐसा कहा जाय, तो भी उनमें बद्धता आ जानेके कारण महा अनिष्टकी बात आ पड़ती है।

अभी यही कहना है कि ब्रह्म कदापि युक्तिद्वारा निर्धर्मक नहीं कहे जा सकते। इसलिए ब्रह्म सधर्मक हैं, निर्धर्मक नहीं। भगवान् सधर्मक हैं, ब्रह्म भी सधर्मक है। इसलिए भगवान ही ब्रह्म हैं, एवं दोनों एक ही हैं। ब्रह्म या भगवान् यदि सधर्मक हो, तो उनमें बद्धत्व एवं मुक्तत्व दोनों ही रहेंगे। यदि बद्धत्व रहे, तो पूर्व युक्तिके अनुसार महा अनिष्टकी बात आ जाती है। तर्कके लिए कहा जाए तो मायावादीके इस अलङ्कारकी भी कोई आवश्यकता नहीं है। भगवान्में बद्धता रहने पर भी वह दोष न होकर उपादेय ही होती है। क्योंकि भगवान् मुक्त होकर भी उनकी एकान्त भक्त-वत्सलताके कारण नन्द-यशोदाके स्नेहसे आबद्ध हैं। उनकी इस प्रकारकी बद्धता में कैसे आनन्दकी लहरें वर्त्तमान हैं, यह बात गुण एवं धर्ममयसे भीत अधार्मिक केवलाद्वैतवादी व्यक्ति किस प्रकार उपलब्धि करेंगे ?

(क्रमशः)